Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 SHISRRJ | Volume 3 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

न्याय–वैशेषिक दर्शन में कारणतावाद

डॉ0उधम मौर्य
(भूतपूर्व शोधछात्र)
दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी,उत्तर प्रदेश,भारत।

सारांश : न्याय–वैशेषिक दर्शन कार्य–कारण के सिद्धान्त के रूप में असत्कार्यवाद को मानते हैं। इनके अनुसार कार्य द्रव्य अपने कारण के अतिरिक्त एक नवीन वस्तु है। केवल अपने अवयवों का संघातमात्र नहीं, अपितु एक पृथक प्रारम्भ है। जैसे तन्तु में पट पहले से नहीं रहता है, अपितु उसकी उत्पत्ति होती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि ये कार्य को असत् मानते हैं या असत् से सत् की उत्पत्ति मानते है। अपितु इनका मत है कि जो पहले असत् था या जिसका प्रागभाव था उसकी उत्पत्ति हुई। न्याय–वैशेषिक दर्शन में कारण तीन प्रकार का माना गया है– समवायि, असमवायि और निमित्त कारण। जिस द्रव्य में समवाय–सम्बन्ध से कार्य की उत्पत्ति होती है, वही द्रव्य का समवायी–कारण है। समवायि–कारण में समवेत होकर कार्य की उत्पत्ति होती है और वह कार्य को उत्पन्न करके भी कार्य के साथ–साथ रहता है। समवायि–कारण में प्रत्यासन्न एवं कार्योत्पादन में अवधृत–सामर्थ्य कारण असमवायि कारण होता है।

मुख्य शब्द : असत्कार्यवाद, सत्कार्यवाद, क्षणिकवाद, संघातमात्र, प्रागभाव, प्रत्यासन्न एवं कार्योत्पादन ।

न्याय–वैशेषिक दर्शन कार्य–कारण के सिद्धान्त के रूप में आरम्भवाद या असत्कार्यवाद का समर्थन करते है। उत्पत्ति से पहले अविद्यमान–अवयवी द्रव्य की उत्पत्ति ही आरम्भ नाम से कथित होने से यह मत आरम्भवाद कहलाता है। न्याय–वैशेषिक भी सांख्य–योग के समान उत्पत्ति को अनियमित नहीं मानते, अपितु उसे कार्य–कारण के नियम के अधीन मानते है। उनके द्वारा स्वीकृत कार्य–कारण का सिद्धान्त असत्कार्यवाद या आरम्भवाद के नाम से जाना जाता है। बौद्ध सभी वस्तुओं को क्षणिक मानते हैं तथा बिना किसी नित्य आधार के सतत् प्रवाह की सत्यता स्वीकार करते हैं। सांख्य दर्शन के अनुसार सभी कार्य नित्य उत्पादन के परिणाम मात्र है, तथा कार्य–कारण में तादात्म्य है। न्याय–वैशेषिक उत्पत्ति के पूर्व कार्य को अविद्यमान मानते हैं (बौद्धों के समान) परन्तु वे उन परमाणुओं को जिनसे सभी वस्तुएँ सृष्ट होती है, उसे नित्य मानते हैं (सांख्य की प्रकृति के समान)। अतः उनके द्वारा स्वीकृत असत्कार्यवाद को सांख्य दर्शन के सत्कार्यवाद तथा बौद्ध दर्शन के क्षणिकवाद के मध्य रखा जा सकता है। नैयायिक कार्य कारण में भेद मानकर दोनों के बीच समवाय सम्बन्ध मानते हैं। सांख्य दर्शन कार्य–कारण में नितान्त अभेद मानने के कारण दोनों के बीच तादात्म्य सम्बन्ध मानता है। जैन कार्य–कारण में भेदाभेद सम्बन्ध मानते हैं।

अद्वैत वेदान्त में विर्वतवाद तक पहुँचने के लिए कार्य–कारण में अभेद सम्बन्ध मानते है। किन्तु शंकराचार्य कार्य और कारण की अभिन्नता पर इतना अधिक बल देते हैं कि परमार्थ में कार्य के अस्तित्व को ही समाप्त कर देते हैं।

न्याय–वैशेषिक का भेदवादी–धर्म–धर्मी का सिद्धान्त कारणवाद में आरम्भवाद का रूप धारण करता है। उनके अनुसार अवयवी या कार्य–द्रव्य अपने अवयव से अतिरिक्त नवीन वस्तु है। वह अपने अवयवों का संघातमात्र नहीं है, एक पृथक् आरम्भ है। जैसे तन्तु में पट पहले से नहीं रहता, उसकी उत्पत्ति होती है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि कार्य को असत् मानते हैं या असत् से सत् की उत्पत्ति मानते हैं। असत्कार्यवाद का अर्थ है जो पहले असत् था या जिसका प्रागभाव था उसकी उत्पत्ति हुई। जैसे– मृत्तिका में घट पहले से नहीं रहता है। कुम्भकार दण्ड, चक्रादि की सहायता से घट की नवीन उत्पत्ति करता है। न्याय–वैशेषिक के अनुसार कारण में समवेत होकर ही कार्य की उत्पत्ति होती है जैसे– तन्तु में समवेत होकर पट की उत्पत्ति होती है। परन्तु तन्तु पट को उत्पन्न करके नष्ट नहीं होता जैसा कि बौद्ध दार्शनिक मानते है। पट को उत्पन्न करने के बाद भी तन्तु पट के साथ–साथ रहता है। न्याय दर्शन में कारण का लक्षण निम्नलिखित रूप में किया गया हैः– ''अन्यथा–सिद्धि–शून्यत्वे सति कार्य नियत–पूर्व–वृत्तित्वम् कारणत्वम्।'' कार्योंत्पत्ति के पूर्व नियमतः अपेक्षित तत्त्वों के अतिरिक्त पदार्थ अन्यथा सिद्ध है। जैसे– घट की उत्पत्ति में रासभ, कपालत्व आदि पदार्थ अन्यथा सिद्ध है क्योंकि घटोत्पत्ति के पूर्व नियमतः कपाल, दण्ड, चक्र आदि पदार्थों से रासभ आदि पदार्थ अतिरिक्त है। न्याय–वैशेषिक दर्शन में कारण तीन प्रकार का माना गया है– समवायि, असमवायि और निमित्त कारण।[1]

समवायि–कारण : जिस द्रव्य में समवाय–सम्बन्ध से कार्य की उत्पत्ति होती है, वही द्रव्य का समवायी–कारण है।[2] समवायि–कारण में समवेत होकर कार्य की उत्पत्ति होती है और वह कार्य को उत्पन्न करके भी कार्य के साथ–साथ रहता है। जैसे– तन्तु पट का समवायि कारण है क्योंकि तन्तु में समवेत होकर ही पट की उत्पत्ति होती है और वह कार्य को उत्पन्न करने के बाद भी पट के साथ रहता है। इससे स्पष्ट होता है कि अवयव अवयवी का समवायि कारण है। कपाल द्वय में घट की उत्पत्ति समवाय सम्बन्ध से होती है। अतः कपाल द्वय घट का समवायि कारण है। इसलिए ''कपालयोः घट समवेत'' ऐसी प्रतीत होती है। यहाँ यह अवधेय है कि साधारण व्यापार में हम लोग ''घट में दो कपाल है''(घट कपालौ) ऐसा कहा करते है, परन्तु न्याय–वैशेषिक सम्प्रदाय के आधार पर 'कपालयोः घटः' प्रतीत होती है क्योंकि कार्य से कारण की सत्ता पहले होती है, अतः पूर्ववर्ती कारण ही परवर्ती कार्य का आधार होगा, न कि परवर्ती कार्य पूर्ववर्ती कारण का। यही समवायि न्याय–वैशेषिक और प्रभाकर मीमांसा को छोड़कर दर्शान्तर में 'उपादान कारण' कहलाता है। अतः कहा जा सकता है कि किसी भी कार्य का जो उपादान कारण है, वही समवायि कारण है। कपाल घट का उपादान कारण है, तन्तु पट का उपादान कारण है। अतः घट का कपाल और पट का तन्तु समवायि कारण है। न्याय–वैशेषिक में उपादान कारण को समवायि कारण कहने का आधार कार्य और उपादान के बीच न्याय–वैशेषिड्भिमत समवाय सम्बन्ध ही है। कार्य और उपादान में जो समवाय सम्बन्ध होता है उसका अनुयोगी उपादान ही होता है। अतः 'कार्यस्य समवायः अस्मिन् अस्ति इति समवायी।' इस व्युत्पत्ति से उपादान के लिए समवायि–कारण शब्द का प्रयोग किया जाता है। समवायि–कारण द्रव्य ही हो सकता है, यद्यपि यह अनुभव सिद्ध है,

तथापि सन्देह निवारण के लिए स्वयं महर्षि कणाद ने भी इस विषय का उल्लेख किया है– (समवायि) कारणमिति द्रव्ये कार्य समवायात्।[3]

असमवायि–कारण : समवायि–कारण में प्रत्यासन्न एवं कार्योत्पादन में अवधृत–सामर्थ्य कारण असमवायि कारण होता है। जो समवायि सम्बन्ध से समवायि कारण में रहता है। कपाल–द्वय घट का समवायि कारण है और कपाल–द्वय का संयोग घट का असमवायि कारण कारण है। घट तो समवाय सम्बन्ध से कपाल–द्वय में रहता है, परन्तु कपाल–द्वय का संयोग न हो तो घट की उत्पत्ति नहीं हो सकती। दोनों कपालों को जोड़े बिना घट का निर्माण नहीं हो सकता। इसी प्रकार तुरी–तन्तु संयोग पट का असमवायि कारण है। इसकी एक और भी परिभाषा दी जाती है– जो कार्य के साथ या कार्य के कारण के साथ एक अर्थ में समवाय से रहे, वही असमवायि कारण है। जैसे– तन्तु रूप पट में है और पट तन्तुओं। अतः पट रूप तन्तु रूप में पट का असमवायि कारण है। गुण का असमवायि कारण कभी समान–जातीय गुण (पट रूप का तन्तु रूप), तदाचित् असमान–जातीय गुण (द्वयणुक–परिमाण का परमाणुगत द्वित्व संख्या) और कभी कर्म (संयोग, विभाग तथा वेग) का होता है।

निमित्त–कारण : समवायि–कारण और असमवायि–कारण से भिन्न कारण को निमित्त–कारण कहा जाता है। जैसे– घट के प्रति दण्ड आदि निमित्त–कारण है। परन्तु ईश्वरेच्छा, दिक्, काल तथा अदृष्ट आदि तो कार्य–मात्र के प्रति निमित्त कारण माने जाते हैं। इसे असाधारण या अतिशय कारण भी कहते हैं क्योंकि अन्य दो साधारण या सहकारी कारण कहलाते हैं। इसकी अतिशयता या विशेषता के कारण ही इसे 'करण' कहते है। करण प्रधान रूप से किसी कार्य का फलोत्पादक कारण माना जाता है। इसकी प्रधानता इसके व्यापार में है। (व्यापारवद् असाधारणं कारणं कारणम्)। घट की उत्पत्ति में व्यापार तो दण्ड, चक्र में है, मृत्तिका आदि सबके रहने पर भी जब तक कुम्भकार दण्ड में चक्र से भ्रमिरूप व्यापार नहीं उत्पन्न करता, घट का निर्माण नहीं होता। कारण, अन्यथासिद्ध, कार्य, करण, समवाय आदि की परिभाषा से तथा कारण की भेद व्याख्या से न्याय–वैशेषिक की कारणतावाद का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। न्याय–वैशेषिक के कारणतावाद के सिद्धान्त को आरम्भवाद कहते हैं क्योंकि इसके अनुसार कारण में कार्य पहले से नहीं रहता है। कारण व्यापार के द्वारा कार्य की नवीन उत्पत्ति होती है। उसका नया आरम्भ होता है। न्याय–वैशेषिक के कारणवाद के सिद्धान्त को असत्कार्यवाद कहते हैं, इसका अर्थ यह नहीं है ि कइस दर्शन में कार्य को असत् माना गया है या असत् से सत् की उत्पत्ति होती है। असत्यकार्यवाद का अर्थ है जो पहले असत् था या जिसका प्रागभाव था, उसकी उत्पत्ति हुई जैसे मृत्तिका में घट पहले नहीं रहता है, कुम्भकार दण्ड, चक्रादि की सहायता से घट की नवीन उत्पत्ति करता है। न्याय–वैशेषिक के अनुसार कारण से उद्भूत यह नवीन कार्य सत् होता है। इस प्रकार कारण और कार्य में अयुतसिद्ध सम्बन्ध है।

चूँकि कार्य–कारण के विषय में न्याय–वैशेषिक आरम्भवाद को स्वीकार करते है। उनकी प्रक्रिया के अनुसार पुरुष के व्यापार करने पर मृत्तिका में समवाय सम्बन्ध से घट उत्पन्न होता है। प्रथम क्षण में पुरुष व्यापार, द्वितीय क्षण में घट की उत्पत्ति तथा तृतीय क्षण में उसमें उद्भूतरूपत्व आदि गुणों का प्राकट्य होता है। नैयायिक गुणी और गुण में भेद करते है। उस भेद के निर्वाह के लिए ही नैयायिक प्रथम क्षण में निर्गुण घट की उत्पत्ति की कल्पना

करते है। नैयायिकों के अनुसार प्रथम क्षण में निगुर्ण घट उत्पन्न होता है, उसमें घटगत रूपादि द्वितीय क्षण में आते हैं। अतः घट और घटगत रूपादि में पौर्वापर्य भाव है, यदि दोनों की तत्कालिक उत्पत्ति मानते हैं तो दोनों की कारण सामग्री भी एक ही माननी होगी तथा दोनों का स्वरूप एक मानना होगा। परन्तु यहाँ घट और घटरूप का एक स्वरूप नहीं है तथा उनकी उत्पत्ति भी एक कारण सामग्री से नहीं होती है? इस प्रकार घट और घटरूप में पौर्वापर भाव मानना पड़ता है। दोनों को एक मान लेने पर घट को ही घट के प्रति कारण मानना पड़ेगा, जो सर्वथा असम्भव है। एक ही घट में पौर्वापर्य भाव नहीं बन सकता।[4]

यहाँ यह शंका उठ सकती है कि प्रथम क्षण में उत्पन्न रूप, स्पर्शादि रहित निर्गुण घट का प्रत्यक्ष नहीं होता है तो उसकी उत्पत्ति से क्या लाभ? आचार्य केशव मिश्र ने इस समस्या का समाधान किया है। उनके अनुसार प्रथम क्षण में निर्गुण घट मान लेने पर व्यवहार में कोई आपत्ति नहीं होती है। घट का निर्गुण अस्तित्व केवल एक क्षण के लिए होता है। घट की सगुण उत्पत्ति मानने पर भी घट के उत्पन्न होते ही हम घट को नहीं देख सकते। एक क्षण के लिए पलक झपक जाने पर उसका प्रत्यक्ष नहीं हो पाता है।[5] द्रव्य का अर्थ होता है गुण का आश्रय होना। प्रथम क्षण का घट निर्गुण है, गुण का आश्रय नहीं है त बवह द्रव्य कैसे हो सकता है? इसके उत्तर में केशव मिश्र का मानना है कि घट निर्गुण है, परन्तु उसमें गुणाश्रय की योग्यता है। अतः उसे हम द्रव्य कह सकते है। उसमें गुण का अत्यन्ताभाव नहीं है।[6] न्याय–वैशेषिक दर्शन में तन्तुओं से पट को तन्तुओं का समुच्चय मात्र नहीं माना गया है जैसाकि बौद्ध दार्शनिक मानते हैं। उनके अनुसार तन्तुओं से निर्मित पट तन्तुओं से सर्वथा भिन्न एक सम्पुर्ण ईकाई है। न्याय–वैशेषिक अवयवों अवयवी की उत्पत्ति मानते है। इसका तात्पर्य यह नहीं समझना चाहिए कि सभी अवयव अवयवी को उत्पन्न कर सकते हैं। इसको स्पष्ट करने के लिए ही न्याय–वैशेषिक ने आरम्भक तथा अनारम्भक दो प्रकार के अवयव स्वीकार किये है। जिससे कार्य की उत्पत्ति होती है उसे आरम्भक अवयव कहते हैं जैसे– तन्तु पट की उत्पत्ति करते है। अतः इनको हम आरम्भक अवयव कहते है। इसके विपरीत कार्य की उत्पत्ति न करने वाले अवयवों को अनारम्भक अवयव कहते है जैसे– घट के टुकड़ों में विभक्त हो जाने पर वे टुकड़ें भी अवयव है किन्तु उनसे कार्य की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

अतः स्पष्ट है कि कारणता के सम्बन्ध में न्याय–वैशेषिक दर्शन आरम्भवाद को स्वीकार करता है तथा कारण के तीन भेद समवायि, असमवायि और निमित्त कारण मानता है। न्याय–वैशेषिक दर्शन में जगत् की व्याख्या इस कारणतापाद के आधार पर ही की गयी है।

संदर्भ :

1. सेतु– पृष्ठ 92, कारिकावली– 1रु19–22
2. तर्कसंग्रह– पृष्ठ 37, भाषापरिच्छेद–2 श्लोक–18
3. वैशेषिक सुत्र–10/2/1
4. तदा कारण भेदाऽप्यस्ति, घटो हि घटं प्रति न कारणमेकस्यैव पौर्वापर्याभावात्। तर्कभाषा (व्याख्याकार–बद्रीनाथ शुक्ल) पृष्ठ 46
5. प्रथमे क्षणे घटो यदि चक्षुषा न गृह्यते, तदा को नो हानिः? न हि सगुणोत्पत्तिपेक्षेऽपि निमेषावसरे घटेट गृह्यते– वही– पृष्ठ 47
6. न प्रथमे क्षणे गुणाश्रयत्वाभावाद् द्रव्यत्वापत्तिः। समवायिकारणं द्रव्यमिति द्रव्य लक्षणयोगात्, योग्यतया गुणाश्रयत्वाच्च, योग्यता च गुणात्यन्ताभावाभवः। वही पृष्ठ 47